International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

# समकालीन हिंदी उपन्यासो में स्त्री चित्रण का अध्ययन

**PAIROJABANU M MESTRI**
RESEARCH SCHOLAR, SUNRISE UNIVERSITY, ALWAR, RAJASTHAN

**DR. VEDKALA YADAV**
RESEARCH SUPERVISOR, SUNRISE UNIVERSITY, ALWAR, RAJASTHAN

## सारांश

समकालीन उपन्यासों में स्त्री चित्रण विभिन्न प्रकारों में किया जाता है, और यह चित्रण समाज के संरूपण, सामाजिक संघर्ष, और व्यक्तिगत विकास के संदर्भ में बदलता है। नए उपन्यासों में, स्त्री का चित्रण उसकी सामाजिक, आर्थिक, और रोमांचिक यात्रा के साथ जुड़ा होता है। उपन्यासों के माध्यम से, समकालीन लेखक समाज में स्त्री की भूमिका को विस्तार से अध्ययन करते हैं और उसकी पहचान को समझने का प्रयास करते हैं। इसके अलावा, ये उपन्यास समाज को स्त्री के विचारों, अनुभवों, और दृष्टिकोणों को समझने में मदद करते हैं। समकालीन भारतीय उपन्यासों में स्त्री चित्रण बहुत विविधता और गहराई से किया जाता है। कुछ उपन्यासों में स्त्री को शक्तिशाली, स्वतंत्र और समर्थ चित्रित किया जाता है, जबकि कुछ में उन्हें परंपरागत भूमिकाओं में बंधा दिखाया जाता है।

वर्तमान समय के उपन्यासों में स्त्री का चित्रण आधुनिकता और परिवर्तन के साथ जुड़ा होता है। वे अक्सर प्रतिबद्धता, साहस, और स्वतंत्रता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं। कुछ उपन्यास स्त्रियों के आंतरिक यात्राओं को और उनकी स्वतंत्रता के विकास को उजागर करते हैं। इन उपन्यासों में स्त्री के चित्रण में समाज, परिवार, और स्वयं के साथ उसके रिश्तों का अध्ययन किया जाता है। वे अपने सपनों के पीछे भागती हैं, अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ती हैं, और अक्सर समाज के परंपरागत धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक नियमों के खिलाफ खड़ी होती हैं।

**मुख्यशब्द**– समकालीन हिंदी उपन्यास, स्त्री विमर्श, स्त्री और दलित मुक्ति संघर्ष, आत्मविश्लेषण और आत्माभिव्यक्ति का संघर्ष

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

## प्रस्तावना

यह भारतीय समाज की विडंबना ही कही जायेगी कि सामाजिक ताने–बाने के मूलाधार दो वर्ग– दलित और नारी कभी एक इंसान का सम्मान नहीं पा सके। जिस सामाजिक मार्गदर्शक वर्ग (पुरोहित) ने अंधेरे में रहने वाली जमात को रोशनी दिखाने का जिम्मा हथियाया था, उसने ठीक उलटे उन्हें और अंधेरे में झोंक दिया। सदियों तक उनकी कोशिश जारी रही कि ये दोनों जमात जागरूक न होने पायें, अन्यथा हमारी सत्ता समाप्त हो जायेगी। अन्यथा वेद में ऋचाओं के निर्माता तक का गौरव प्राप्त नारी और शुद्र, कुछ समय बाद अस्पृश्य या गुलाम न बना दिये जाते। भारतीय मनीषा के कथित पुरोधाओं ने न केवल इन दोनों वर्गों को मनु यता से खारिज किया, बल्कि अपने ही बनाये नियमों को तोड़ा। जहाँ एक ओर मनु अपनी स्मृति में मानवीय सामाजिक संरचना की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'जन्मना जायते शुद्रः' 'संस्कारात् जायते द्विजः' 'वेदपाठिनः विप्रः' 'ब्रह्मं जानाति ब्राह्मणः' वही आगे उनका सम्पूर्ण चिंतन इस बात में प्रवाहित होने लगता है कि कैसे जातियों का घेरा ाश्वत काल से अखंड बना रहे। जातियों के टूटने से कितना पाप और कितनी सजा हो सकती है, मनु महाराज ने कोई कोना छोड़ा नहीं। वास्तव में यदि कार्ल मार्क्स धर्म को अफीम की संज्ञा देते हैं तो कोई अनुचित नहीं करते। गहराई से पड़ताल करने पर ज्ञात होता है कि धर्म (?) ने भारतीय समाज में द्वेष और वैमनस्य फैलाने, इंसानियत छीनने के अलावा कुछ नहीं किया। यह धर्म कब और कैसे बन गया, पता नहीं। क्योंकि इसके पूर्व के ाास्त्रों ने धर्म के दस लक्षण बताये थे, जिससे कहीं भी मानवता का हनन नहीं होता–

*धृति क्षमा दमोस्तेयं ाौचमिन्द्रिय निग्रहः।*

*धीर विद्या सत्यं अक्रोधो दशकं धर्म लक्षणः।।*

जाहिर सी बात है कि इन दस में से एक भी लक्षण ऐसा नहीं है, जो अमानवीय हो। जबकि मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियों, भृगु आदि की संहिताओं में स्थापित धर्म व्यवस्था उपरोक्त पंक्तियों के ठीक विपरीत क्रियाशील हैं। इन संहिताओं और स्मृतियों को केवल सामान्य धार्मिक ग्रंथ कहकर भी नहीं छोड़ा जा सकता, क्योंकि बाद की सामाजिक

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

व्यवस्था के लिए इनके नियम ही आचार संहिता बन गये। राज संरक्षित होने के कारण ये आचार संहिताएं पूर्णतः दण्ड विधान का पालन भी कराती थीं। यहाँ तक कि मर्यादा पुरुषोत्तम कहे जाने वाले राम तक ने शुद्र ांबूक को तप करने के अपराध के कारण मार डाला।

ऐतिहासिक आख्यान इस बात के प्रमाण देते हैं कि स्मृतियों, संहिताओं, पुराणों द्वारा निर्मित सामाजिक जकड़बंदी को भारत की कोई भी ाासन व्यवस्था समाप्त नहीं कर पायी। उल्टे इसे और भी कड़ा करने में मदद ही करती रही। इसलाम एक बड़े ाासन संप्रदाय के रूप में भारत आया, लेकिन वहाँ तो स्त्रियों की दशा और भी खराब निकली। खराब ही क्यों, कई मामलों में हिन्दू धर्म से भी अधिक बंद। इस्लाम ने हिन्दू धर्म की नारी विषयक कुण्ठाओं को और भी पोषित किया। अंग्रेजों के आने से भारतीय महिलाओं को प्रत्यक्ष तो कोई मुक्ति नहीं मिली, किन्तु उनकी लेडियों की उन्मुक्तता से भारतीय आभिजात्य समाज पर प्रभाव जरूर पड़ा। कई अवसरों पर इस उन्मुक्तता का आयोजन खुद राजा द्वारा भी किया जाता था किन्तु वह भी पूर्णतः राजा की मर्जी पर निर्भर करता था। सर्वविदित तथ्य है कि मानव मन स्प्रिंग की तरह होता है। उसे जितना ही दबाया जायेगा, छूटने पर कई गुना बेग से वह और आगे बढ़ेगा। लंबे समय की दासता दलितों और स्त्रियों के मन को लंबे समय से दबाये हुए थी। अंग्रेजों के आगमन के साथ बढ़े अत्याचार ने इस दबाव को और भी ज्यादा किया। परिणाम यह हुआ कि दोनों के समक्ष आजादी के संघर्ष में दोहरे संकट खड़े थे। एक ओर देश की आजादी थी और दूसरी ओर खुद की आजादी का सवाल। ऐसी परिस्थितियों में व्यक्ति क्या करेगा? अपनी आजादी देखेगा या फिर देश की। ाायद यही कारण रहा कि अंबेडकर के समक्ष एक बड़ी चिंता खड़ी थी कि देश यदि आजाद भी हो गया तो क्या फर्क पड़ेगा? दलित तो पहले की ही तरह दलित रह जायेंगे। वही दमित हालात! जो बौद्धिक वर्ग अंबेडकर पर आजादी के संघर्ष के दिनों में खुलकर साथ न देने का आरोप लगाते हैं, उन्हें उनकी मजबूरियों को समझना चाहिए। यह तो वैसा ही था, जैसे अपने शोषक को मुक्त कराकर अपने शोषण का फिर से द्वार खोलना। वे दुनिया के शेष देशों के मनु यों की तरह भारत के दलितों को इंसानियत का हक

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

दिलाना चाहते थे। जबकि भारतीय समाज में दलितों और स्त्रियों के लिए रहने, खाने, चलने, बोलने, पहनने, सोने, हँसने, घर से बाहर निकलने, मरने, जीने, यौनिक आदि हर किसी मानवोचित व्यवहार पर कड़े पहरे तैयार किये गये थे। अंग्रेजों की गुलामी कम से कम इस हद तक निम्नतर नहीं थी। मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में इन दोनों प्रकार के द्वंद्वों का स्वरूप आसानी से देखा जा सकता है। नारी और दलितों के हालात ही ऐसे बनते गये, जिसका प्रतिफलन जरूरी हो गया और यह प्रतिफलन खुलकर सामने आया डॉ. अंबेडकर के प्रयासों और दलित मुक्ति के अभियानों से। पहली बार इतने बड़े पैमाने पर किसी रा ट्रव्यापी व्यक्तित्व द्वारा इस अस्पृश्य वर्ग के अधिकारों की बात उठाई गयी, जिसका सीधा असर भारतीय राजनीति पर पड़ा। लोकतांत्रिक व्यवस्था होने के कारण इस आवाज को न दबाया जा सकता था और न ही अनदेखा किया जा सकता था।

दूसरी ओर स्त्री वर्ग तो पूरी दुनिया में ही दोयम दर्जे की मनु य मानी जाती थी। हिन्दू धर्म में तो कम से दलित समुदाय में स्त्रियों को बहुत हद तक आजादी प्राप्त भी थी, किन्तु मध्यम वर्ग के स्तर पर वे पूर्णतः गुलाम थी। उन्नीसवीं सदी में यूरोप में जो महिला आंदोलन शुरू हुआ तो उसका संदेश भारत तक गया। हालांकि इसके पूर्व बंग महिला, महादेवी वर्मा सरीखी महिलाओं ने नारी अधिकारों की बात शुरू कर दी थी, किन्तु आजादी के बाद करीब सन 60 से इसका भी उभार हुआ। हालांकि इसके पूर्व अनेक पुरुष रचनाकारों ने नारी पीड़ा को अपने साहित्य में उकेरना शुरू कर दिया था, किन्तु इसको धार मिली महिला लेखकों के लेखन से। कृ णा सोबती, अमृता प्रीतम जैसी लेखिकाओं की क्रमशः मित्रों मरजानी और रसीदी टिकट जैसी रचनाएँ सामने आने पर हिन्दी साहित्य में एक तरह से भूचाल ही आया। वर्ष 1975–80 दशक के आस–पास धर्मवीर भारती द्वारा सम्पादित धर्मयुग, मनोहर श्याम जोशी द्वारा संपादित हिन्दुस्तान, राजेंद्र अवस्थी द्वारा सम्पादित सारिका जैसी हिंदी उपन्यासो ने नारी और दलितों की मुक्ति से सम्बंधित विशेषांक निकालने शुरू किये तो राष्ट्रीय स्तर पर बहसें शुरू हो गयीं। सिनेमा में जिस तरह प्रारंभिक दौर में स्त्री पात्रों का मिलना कठिन था, कुछ वैसी ही दशा शुरू में महिला लेखिकाओं की थी, किन्तु जब बात

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

शुरू हुई तो इतनी तेजी से आगे बढ़ी जिसमें उनके अधिकारों की बात पूरे आकाश में फैल गयी। सत्तर के दशक से विचारधारा और सृजन के स्तर पर नारी और दलित विचार–विमर्श और हक की बहस शुरू हुई, तो वह दिनोंदिन और गतिमान होती गयी। सातवें दशक के बाद इन दोनों के अधिकारों से संबंधित लिखी जाने वाली रचनाएं समकालीन या समसामयिक नाम पाकर मुखर रहीं और आज इसका प्रतिफलन है कि समूचा हिन्दी लेखन इन्हीं दो बिंदुओं के इर्द–गिर्द परिक्रमा कर रहा है। आज सहस्राधिक दलित और महिला लेखकों द्वारा उठाये गये जबर्दस्त हमलावरी तर्कों का जवाब फिलहाल कहीं नहीं है।

## समसामयिक और समकालीन का सामान्य व विशिट अर्थ

### सामान्य अर्थ

'समय' और 'काल' सामान्यतः एक ही अर्थ का ध्वनन करते हैं। इसमें 'सम्' उपसर्ग लग जाने के उपरांत अर्थ गांभीर्य अपेक्षाकृत बढ़ जाता है। दरअसल, 'सम्' उपसर्ग है। हिन्दी व्याकरण के विद्वानों ने इसके अनेक अर्थ बताए हैं। डॉ. हरेदव बाहरी ने इस उपसर्ग के जुड़ने के उपरांत शब्द के दो प्रवृत्तिपरक अर्थ परिवर्तन बताए हैं। पहला सम्यक् यानी अच्छी तरह के अर्थ में और दूसरा संकलन यानी इकट्ठा करने के अर्थ में। प्रथम श्रेणी में इसके 30 प्रकारार्थों की चर्चा उन्होंने हिन्दी शब्दकोश में की है। ये हैं संकर्षण, संकीर्ण, संकोच, संक्रमण, संक्षालन, संक्षिप्त, संगीत, संगोपांग, संग्राहक, संघर्षण, संचालन, संज्ञातप, संताप, संतुलन, संतोष, संप्रेषण, सम्बोधन, सम्मान, सम्मोहन, संयम, समादर, समाधान, समायोजन, समारंभ, समलिंगन, समालोचना, समीक्षा, समुत्थान।1 इसी तरह इकट्ठा के अर्थ में संकर, संकलन, संगम, संगायन, संगो ठी, संचय, संचार, संस्थान, समागम, समारोह, समास, सम्मेलन का अर्थ गांभीर्य निहित है। इसी सम् उपसर्ग के जुड़ने के कारण ही समसामयिक और समकालीन शब्दों का निर्माण हुआ है। 'समसामयिक' में जहां 'इक्' प्रत्यय जुड़ा है, वहीं 'समकालीन' में 'इन'। 'इक्' प्रत्यय समय विशेष की सूचना तथा 'इन' प्रत्यय (दृश से) दर्शी का बोध कराता है। इस तरह समसामिक का अर्थ हुआ एक समय विशेष की सूचना, जिसमें वर्तमान का अभिधार्थ निहित है और दर्शी

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

शब्द उस समय विशेष पर विशेष निगाह रखने वाले के लिए हुआ।

इस तरह समसामयिक और समकालीन शब्दों का सामन्य अर्थ हुआ– एक समय विशेष में रहने या होने वाला। यह अंग्रेजी के 'कॉन्टेम्परेरी' (Contemporary) का समानधर्मा है। लेकिन अब इन शब्दों के अर्थ, प्रचलन में काफी व्यापकता आ गयी है। हिन्दी के वर्तमान काल के साहित्य को समान रूप से समसामयिक और समकालीन साहित्य की संज्ञा प्रदान कर दी जाती है। इसमें भी समसामयिक की अपेक्षा समकालीन शब्द अधिक प्रचलन में है। हिन्दी साहित्य में इन शब्दों का प्रयोग नयी कविता के बाद यानी करीब सन् 60 के बाद अद्यतन सृजित रचनाओं के लिए किया जा रहा है। आधुनिक, वर्तमान और आज के साहित्य लिए दोनों शब्दों का प्रयोग अब सामान्य हो चुका है। इसके लिए अन्य नाम भी प्रचलन में हैं। वर्तमान साहित्य, साम्प्रतिक साहित्य, साठोत्तरी साहित्य, सातवें दशक का साहित्य, आठवें दशक का साहित्य वगैरह। अलग–अलग विधाओं के लिए भी इन समयावधियों का प्रयोग इस तरह किया गया है– साठोत्तरी उपन्यास, सातवे दशक की उपन्यास, साठोत्तरी कहानी, सातवें दशक की कहानी आदि। इन सभी नामों के लिए सबसे पहले प्रो. रघुवंश ने अपनी समीक्षा पुस्तक 'आधुनिकता और सर्जनशीलता' में समकालीन नाम दिया था। यह नाम धीरे–धीरे उनके समकालीन और परवर्ती साहित्यकारों और आलोचकों ने बार–बार प्रयोग किया। इन साहित्यकारों में प्रो. विद्यानिवास मिश्र, प्रो. कुबेरनाथ राय, डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र, डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, डॉ. ंभुनाथ, डॉ. सत्येंद्र, डॉ. वीरेंद्र डंगवाल को ामिल किया जा सकता है। इन्होंने इन शब्दों का प्रयोग वर्तमान की सर्जनात्मकता के लिए किया। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रो. शिव प्रसाद सिंह, प्रो. बच्चन सिंह, प्रो. त्रिभुवन सिंह, आदि ने साठोत्तरी, सातवें या आठवें दशक की बजाय समकालीन संज्ञा को अधिक सार्थक तथा अर्थवान माना।

## विशिष्ट अर्थ

हिन्दी साहित्य में समकालीन और समसामयिक शब्द सामान्य के अलावा एक विशि ट अर्थबोध रखते हैं। देखा जाय तो दोनों शब्द एक प्रवृत्ति और एक चिंतन विशेष

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

की ओर संकेत करते हैं। यह प्रवृत्ति जुझारू और विद्रोहात्मक है, जिसके केंद्र में है आम आदमी। मनु यता। संकीर्णता से परे एक ऐसी भावभूमि जिसमें बराबरी और समरसता का संदेश निहित है। जहां मानव मात्र के प्रति बिना किसी षड्यंत्र के सुव्यवस्थित सिस्टम की वकालत है। डा0 रघुवंश ने साठ के बाद के रचनाधर्म और तत्कालीन प्रवाह को पहचानते हुए ही साहित्य को नयी कविता, नयी कहानी, नये उपन्यास समेत सभी 'नये' शब्दों को परे करते हुए इस शब्द को अपने समीक्षा ग्रंथ में संज्ञा के रूप अभिहित किया था। यह संज्ञा कुछ वैसे ही अपनी प्रवृत्ति का उद्घोष करता है, जैसे आदिकाल, चारण काल, वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल और आधुनिक काल के अन्य उपकालों की प्रवृत्तियां अपने युग के साहित्यिक स्वरूप को उजागर करती हैं। रघुवंश समेत उपर्युक्त गण्य विद्वानों ने बराबर मूल्यों, प्रतिमानों, सर्जन की प्रकृति आदि को समकालीनता की विशि टता में समाहित किया है। ललित साहित्य के पुरोधा कुबेरनाथ राय ने लोक जीवन से प्राप्त रस को नयी भाषा, नयी सोच के साथ जुड़कर वर्तमान की मानवीयता को समकालीनता की परिधि में रखा है।

डॉ. विश्वंभर नाथ उपाध्याय ने लिखा है कि ''समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करना हैं समस्याओं और चुनौतियों में भी केंद्रीय महत्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है।''2 प्रो. परमानंद श्रीवास्तव ने लिखा है कि ''गहरे ऐतिहासिक मोहभंग के परिणामस्वरूप आज की समकालीनता एक सर्वथा नयी मूल्यवत्ता के संदर्भ के पास की है, जो हमें मानव अस्तित्व की कठोर गतिविधियों या कर्म या राजनीति में हिस्सा लेने को बाध्य करती है।''3 समकालीनता को प्रतिबद्ध जीवनदृष्टि कहा है– वह जीवन दृष्टि, जो अपने युग की कटु और नंगी वास्तविकताओं का साहसपूर्ण सामना करती है और परंपरित मूल्यों की जांच–पड़ताल करती है। जरूरी होने पर मूल्य निर्माण की दशा में प्रयास भी करती है। स्वचेतन, संचेतना, अथवा संवेदनशीलता को समकालीनता का केंद्रीय तत्व माना गया है। सचेतन व्यक्ति का कालबोध, देशबोध, समयबोध की त्रिकसंगति ही इसकी पहचान है। समकालीनता, नवीन संवेदना और

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

सौन्दर्यबोध की अनिवार्य परिणति को माना गया है। एक वाक्य में कहें तो समकालीनता काल के प्रवाह में वर्तमान का हस्तक्षेप है।

### अ. परिवेश से टक्कर

समकालीन साहित्य हताश होने की बजाय मुठभेड़ में अधिक विश्वास करता है। समसामयिक साहित्यकार के समक्ष आज विश्वग्राम उपस्थित है। अब उसका हृदय संकीर्ण परंपराओं की खोल ओांककर जानने लगा है। उसे अब न तो पुरातन का मोह सताता है और न ही दुराग्रह। वह जो भी ठीक और ग्राह्य है उसे स्वीकार करने से नहीं हिचकता। वह ाो ाण के शिकार हर तबके का हिमायती है और उसकी लड़ाई को अपने लेखन का वि ाय बनाना अपना धर्म समझता है। चंद्रकांत देवताले की कविता 'सबसे जरूरी काम' वर्तमान के कठोर सच का पर्दाफाश करती है–

'प्रजातंत्र की रथयात्रा निकल रही है

औरतों और बच्चों को रौंदा जा रहा है

गुंडों और नोटों की ताकत से हतप्रभ लोग

खामोश खड़े हैं

मैं भी खामोश खड़ा हूँ और काँप रहा हूँ।'

### ब. विसंगतियों का सामना और अभिव्यक्ति

समकालीन और समसामयिक साहित्य में हर प्रकार की विसंगतियों की यथार्थ के आईने में पड़ताल होती है। इसका साहित्यकार भय से मुक्त होकर सभी पहलुओं पर अपने विचार बेबाक रखता है। इसके लिए चाहे जिस भी जिम्मेदार को निशाना बनाना पड़े, वह नहीं चूकता। साथ ही भा ाा, शिल्प और विधा के मामले में भी वह स्वतंत्र है। अविश्वास, लोभ, अनास्था, व्यक्तिनि ठता, टूटते–बिखरते परिवार, अलगाव, अजनबीपन, अमानवीय जाति व्यवस्था, धार्मिक छद्म और उसके पीछे के सच, नारियों की आजादी पर पहरेदारी को समकालीन साहित्य ने कविता और गद्य विधाओं में जमकर उकेरा है। गोरख पांडेय की कविता इस मामले में द्र टव्य है–

'मक्कार बांटते हैं प्यार का/इश्तहार

अत्याचारी न्याय का प्रमाणपत्र।

संसद भवन और बूचड़खाने में।

समान सम्मान से घूमती है/जादू की छड़ी।

जो हर कानून से बड़ी है/

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

ज्ञान की मंडियां/चलाते हैं कातिल

दलाल और रंडिया.....'

**स. जमीन से जुड़ा हुआ सरोकार**

समकालीन साहित्य हवाई संवेदनाएँ नहीं गढ़ता। वह जमीन से जुड़ी समस्याओं का चितेरा होता है। ग्रास रूट लेबल के लोग किस पीड़ा में रात–दिन जीवन बसर कर रहे हैं और सरकारों के नुमाइंदे किस तरह उनका ाो ाण कर रहे हैं, इसका नग्न चित्रण करने में समकालीन साहित्यकारों ने कोई कसर न छोड़ी है। आपातकाल की घो ाणा से मर्माहत नागार्जुन, विजयदेव नारायण ााही और डॉ. धर्मवीर भारती ने अपनी धरती, अपने लोगों, समाज को उसकी बेबसी व तिलमिलाहटको ाब्द दिया। आपातकाल पर डॉ. धर्मवीर भारती की 'मुनादी' कविता द्र टव्य है–

खलक खुदा का, मुलुक बाश्शा
का/हुकुमशहर कोतवाल का

हर खासो–आम को आगाह किया जाता है

कि खबरदार रहें

और अपने–अपने किवाड़ों को अंदर से बंद कर लें

गिरा लें खिड़कियों के परदे

और बच्चों को सड़क पर न भेजें क्योंकि

एक बहत्तर बरस का बूढ़ा आदमी अपनी कांपती

कमजोर आवाज में

सड़कों पर सच बोलते हुए निकल पड़ा है।

**द. वर्ग चेतना के धरातल पर दमन का विरोध**

इधर देश का चरित्र काफी धुंधला हुआ है। सच ढूं रहा है। वह उन पर खामोश नहीं होता। फर्जी मुठभेड़ों, राशनकार्ड से लेकर रक्षा खरीद तक में घोटालों का सच वह देख चुका है। निहित राजनीतिक स्वार्थों के चलते दंगे करवाने, आर्थिक हथकंडों को अंजाम देने, मुनाफाखोरी, महंगाई आदि की ओर से लोगों का ध्यान बांटने के लिए पूंजीवादियों के साथ ही सरकारों का छद्मरूप एक नहीं अनेक बार सामने आ चुका है। देश में राजनीतिक गिरावट हावी है। साहित्यकारों ने ऐसे मसलों पर बेबाक कलम चलाई है। बाबा

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

नागर्जुन की दो पंक्तियाँ इसका समूचा चित्र सामने खींच देती हैं–

राजनीति क्या है? वि ठा है, मल है।

साहित्य क्या है? गंगा का जल है।

**य. रूढ़ियों, परंपराओं और छद्मों की अस्वीकृति**

समकालीन व समसामयिक साहित्यकारों ने परंपरा से चली आ रही सवर्णवादी, वर्णधर्मवादी व्यवस्थाओं को नकार कर मानवता को ाी र्ा पर स्थापित किया है। उन्होंने संहिताओं और स्मृतियों के फतवों के पीछे के ढोंग को भी खोलकर सामने रख दिया है। महिला लेखिकाओं ने जहाँ चारदीवारियों, देह पर पुरु ा का स्वामित्व, परिवार के प्रति खोखली आस्थाओं, आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों से पृथक रखने की मंशाओं से विद्रोह कर अपनी मुक्ति की आवाज बुलंद की, वही दलित लेखकों ने भारतीय पाखंडों की जबर्दस्त चीर–फाड़ कर प्रत्येक के पीछे का सच सबके सामने रख दिया। लीलाधर जगूड़ी की कविता इस संदर्भ में द्र टव्य है–

''मनु य को कविता तक पहुँचना है
और उसके बाद वहाँ तक भी।
जहाँ तक कविता पहुँचाना चाहती है
मनु य को।''8

**र. प्रेम व सौंदर्य की नवीन चेतना**

समकालीन साहित्य में प्रेम नितांत वैयक्तिक व उन्मादक नहीं रह गया। यहां कवि अथवा साहित्यकार प्रेम को संपूर्ण परिस्थितियों के आलोक में मूल्यांकित करने का हिमायती हो गया। उसके लिए प्रेम 'और भी गम हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा' बन गया। हिन्दी साहित्य के पूर्व प्रचलित प्रेम पद्धतियों को समकालीन साहित्यकारों ने नकार दिया। उन्होंने माना कि दुनिया में जीना है तो जिन्दगी की अहम् समस्याओं के साथ ही प्रेम चलेगा, न कि जिन्दगी को दरकिनार कर केवल प्रेम के लिए ही जीते और मरते रहना। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की 'नौकरी और प्यार' ाी र्ाक कविता में इसका पु ट प्रमाण मिलता है–

'क्योंकि नौकरी इस जन्म के लिए जरूरी है
अतः प्यार को अगले जन्म के लिए
स्थगित करता हूँ।'

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

समकालीन साहित्य का सौन्दर्यबोध संश्लेि ात सौन्दर्यबोध है। इसमें भावुकता और उन्माद की बजाय सूझ–बूझ, वैज्ञानिक, पारिस्थितिकीय और यथार्थबोध से संबद्ध चिंतन है। यहाँ कवि अमंगल में भी सौंदर्य खोज लेता है। इन कवियों ने सौंदर्य के नकारात्मक और नि ोधात्मक पक्षों पर भी खूब चिंतन किया है।

## दलित हित में गैर–दलितों के संघ एवं संगठन

आधुनिक भारतीय सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य में महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी और महात्मा गाँधी का विशेष प्रभाव है। यदि आधुनिक भारत में गाँधी ने देश के सामाजिक मानदंडों के परिवर्तन की दिशा में विशेष प्रयत्न किये हैं तो प्राचीन भारतीय सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था में यही कार्य महावीर और बुद्ध ने किया। इन्होंने देश में पहली बार वर्ण व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठायी, समानता और भाईचारे का संदेश दिया। दलित चेतना वर्ण और जाति–व्यवस्था और उसकी मान्यताओं के विरोध की बात करती है। वह मानती है कि गैर दलित चाहे कितने प्रगतिशील हों, उनमें दलितों के भोगे हुए यथार्थी की पीड़ा और अनुभूति की प्रामाणिकता नहीं आ सकती। ऐसे में बुद्ध और महावीर जो स्प टतः गैर–दलित यानी क्षत्रिय थे, को दलित चेतना अपना मसीहा मान लेती है, पर गाँधी को नहीं। गांधी जी को गुजरात की परंपरा में भले ही सवर्ण मान लिया जाये, किन्तु भारतीय वर्ण व्यवस्था उन्हें वैश्य ही मानती आयी है। जाहिर है, वैश्यों की सहानुभूति दलितों के प्रति उच्च शीर्ष पर विराजमान शेष दो वर्णों की अपेक्षा अधिक रही है। फिर क्या कारण है कि गांधी दलित–विरोध के मुख्य निशाना हैं, पर बुद्ध दलितों के मसीहा ?

यदि अनुभूति और भोगे हुए यथार्थ की बात की जाये तो महावीर और बुद्ध तो राज परिवार से आते थे। उनके पास कौन सी भोगी हुई पीड़ा का यथार्थ और अनुभूति की प्रामाणिकता थी? उन्होंने तो केवल द्र टा की सहानुभूति को लेकर ही इतना बड़ा परिवर्तन कर डाला। इसके विपरीत गाँधी ने वेतों द्वारा अश्वेत भावना की त्रासद पीड़ा और प्रताड़ना झेली थी और रंगभेद तथा छुआछूत के खिलाफ जबर्दस्त आंदोलन चलाया था। फिर गाँधी के प्रति दलितों की टेढ़ी दृष्टि का कारण क्या है? ऐसे में

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

सहानुभूति और स्वानुभूति का सवाल बेमानी–सा लगता है। विषय के सरलीकरण के लिए मान लेते हैं कि बात सहानुभूति और स्वानुभूति की नहीं, मानसिकता और मौलिक प्रवृत्ति की है, प्रतिबद्धता की है। माना गाँधी में यह मानसिकता, प्रवृत्ति और प्रतिबद्धता कम थी, किन्तु प्रेमचंद? जीवन भर किसान–मजदूरों की कथा लिखने वाले प्रेमचंद में तो दलित समस्या और दलितों के प्रति भी लगभग वही प्रतिबद्धता थी। तो क्या केवल गाँधीवादी साहित्यकार होने के कारण ही प्रेमचंद की दलित– दृष्टि भी विवादास्पद हो गयी? दलित समाजशास्त्र और साहित्य के इन सारे प्रश्नों के लिए फिर से इतिहास में जाने की जरूरत है। प्राचीन काल से लेकर अब तक दलित समस्या के निदान के लिए गैर दलित खासकर ब्राह्मण ही आगे आये। सहानुभूति और दया से ही इतिहास में इस दिशा में ब्राह्मणों की एक बड़ी संख्या दिखाई पड़ती है। नरसी मेहता, लाल डेड, बसवन्ना, दयानंद सरस्वती के योगदान को हम पहले ही देख चुके हैं। यह चौंकाने वाला आश्चर्य है कि दलित चेतना भारत की सामाजिक समस्या को आर्थिक दृष्टि से उतना नहीं देखती, जितना धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से। यदि दलित चेतना के संस्कृति विमर्श और साहित्य को देखें तो इसमें भूख की पीड़ा सिरे से गायब है। जीवन की एकमात्र समस्या है दलितबोध की मारक पीड़ा और उससे मुक्ति की छटपटाहट। इसी चेतना के बरक्स आधुनिक भारत की दो महान हस्तियों को आमने–सामने देखा जा सकता है। समस्या के एक छोर पर हैं गांधी और दूसरे छोर पर अंबेडकर। दोनों का जीवन भारतीय जनता की मुक्ति को ही समर्पित है। किन्तु एक की मुक्ति दलित मुक्ति के बहाने विश्व मानवता की मुक्ति है। दलित मुक्ति गाँधी की मजबूरी है तो राष्ट्रीयता अंबेडकर की। देश की दोनों महान विभूतियां जीवनपर्यंत मुक्ति के संघर्षों से ही घिरी हुई हैं। भारतीय संस्कृति और समाज की यह कितनी बड़ी विडंबना है कि दृष्टि–भिन्नता और अलग–अलग रास्तों के बावजूद दोनों महान हस्तियों की ाहादत सांप्रदायिकता और दलित मुक्ति के सवालों पर ही होती है, राष्ट्रीयता के सवालों पर नहीं। गाँधी की हत्या सांप्रदायिक ताकतों द्वारा होती है और दबी जुबान से यह भी कहा जाता है कि अंबेडकर की मृत्यु भी पत्नी की मृत्यु के बहुत बाद अनिच्छा और लाचारी

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

में किये गये उनके गैर दलित विवाह के कारण हुई थी। सच्चाई जो भी हो, गांधी और अंबेडकर इस विशाल भारत देश के दो वटवृक्ष हैं, जिनमें से किसी का महत्व किसी से कम नहीं है। दोनों के मिलने से ही राष्ट्रीयता और मानवता का महायज्ञ पूरा होता है। अकेले–अकेले दोनों ही अधूरे हैं। लेकिन आज ये दोनों दलित और गैर दलित के प्रतीक बन कर रह गये हैं और दोनों ही दृष्टियां अपने–अपने प्रतीकों में भारतीयता और मानवीयता की पूरी तस्वीरें देखना चाहती हैं, पर निराश हो जाती हैं। कहीं न कहीं उन्हें समझौता करना पड़ता है।देश और दुनिया इसी समझौते पर जी रही है, किन्तु गाँधी और अंबेडकर ने कभी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं किया था।

## निष्कर्ष

हिन्दी दलित साहित्य और स्त्री– चित्रण साहित्य विभिन्न हिंदी कविताओं के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका था। धर्मयुग और सारिका आदि हिंदी कविता तथा धर्मवीर भारती के नेतृत्व वाली टीम ने दोनों विमर्शों पर खूब लिखा। स्त्री चित्रण पूरी तरह से हिन्दी साहित्य की दुनिया में छा–सा गया था, लेकिन जब 'हंस' हिंदी कविताओं के पहल ने इसे साहित्य के केन्द्र में लाकर खड़ा कर दिया। इसके सम्पादक राजेन्द्र यादव ने न केवल इसे प्रोत्साहन, स्वीकृति ओर जबर्दस्त समर्थन प्रदान किया, बल्कि इसके कोख से न जाने कितने, कुछ नामी और कुछ गुमनाम; दलित एवं स्त्री विचारकों/लेखकों/लेखिकाओं/कवियों और कवयित्रियों को जन्म और मंच दिया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि आज के अधिकांश दलित एवं महिला लेखक की देन हैं। चाहे मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश बाल्मीकि, माता प्रसाद, तुलसीराम, कांता भारती, अर्चना वर्मा, डॉ. धर्मवीर, अजय नावरिया, योराज सिंह बेचैन, डॉ. जय प्रकाश कर्दम, रमणिका गुप्ता, कर्मशील भारती, कंवल भारती, डॉ. विवेक कुमार, भगवान दास मोरवाल, रत्नकुमार सांभरिया आदि दलित विचारक हों या फिर प्रभा खेतान, मन्नू भण्डारी, नासिरा ार्मा, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पु पा, सूर्यबाला, मृणाल पाण्डेय, अर्चना वर्मा, जया जादवानी आदि स्त्री लेखिका, सभी को हंस ने अपने से जोड़कर उनके विचारों को राष्ट्रीय और वैश्विक मंच प्रदान किया।

International Journal For Advanced Research In Science & Technology
A peer reviewed international journal www.ijarst.in
ISSN: 2457-0362

## संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय विवाह संस्था का इतिहास, विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े, 1988

2. हिन्दू जाति का उत्थान और पतन, रजनीकांत ाास्त्री, किताब महल, इलाहाबाद, 1940

3. स्त्री उपेक्षिता, सीमोन द बोउवार, सरस्वती विहार, दिल्ली, 1990

4. भारतवर्ष में विवाह और परिवार, के.एम. कपाड़िया, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1963

5. आलोचना की अपनी परम्परा, डॉ. उदय प्रताप सिंह, तथागत प्रकाशन, सारनाथ वाराणसी

6. आदमी की निगाह में औरत, राजेंद्र यादव, राजकमल प्रकाशन– 2001

7. उठो अन्नपूर्णा साथ चलें, उषा महाजन, समरलोक हिमालय पुस्तक भंडार, 1995

8. औरत के हक में, तसलीमा नसरीन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–200

9. नारीवादी चित्रण, राकेश कुमार, आधार प्रकाशन, पंचकूला– 2001

10.स्त्रीत्व का मानचित्र, अनामिका, सारांश प्रकाशन, दिल्ली–1996

11. विद्रोही स्त्री, जर्मेन गीयर, विद्रोही स्त्री, वाणी प्रकाशन– 2001

12.स्त्री और पराधीनता, जान स्टुअर्ट मिल, संवाद प्रकाशन, मेरठ– 2002